सुदर्शनचक्र की प्राप्ति, शिवसहस्त्रनाम का वर्णन, शिवरात्रि व्रत की महिमा, चतुर्विध मुक्ति का वर्णन, शिव द्वारा विष्णुप्रभ ति देवताओं की उत्पत्ति का वर्णन, एकमात्र भक्ति-साधन से ही शिव-भक्ति-लाभ, लिंग-प्रतिष्ठा, लिंगनिर्माण, ब्रह्मा-विष्णु द्वारा शिव की पूजा, लिंग-पूजा का नियम, शिव-तीर्थ-सेवामाहात्म्य, पंचमहायज्ञ कथन, पार्थिव प्रतिमाविधि, प्रणव माहात्म्य, शिवभक्ति-पूजा कथन षड्लिंग-माहात्म्य, बन्धन-मुक्ति-स्वरूप-कथन, लिंगक्रमकथन, रुद्रस्तव, शिवसर्वज्ञादिकथन, रुद्रलोक, ब्रह्मलोक तथा विष्णुलोक का विवरण।

उपपुराण

पुराणों की भांति उपपुराणों की भी गणना की गयी है। विद्वानों का विचार है कि पुराणों के बाद ही उपपुराणों की रचना हुई है, पर प्राचीनता अथवा मौलिकता के विचार से उपपुराणों की महत्ता पुराणों के समान है। उपपुराणों में स्थानीय सम्प्रदाय तथा प थक् प थक् सम्प्रदायों की धार्मिक आवश्यकता पर अधिक बल दिया गया है। उपपुराणों की सूची इस प्रकार है-

सनत्कुमार, नरसिंह, नान्दी, शिवधर्म, दुर्वासा, नारदीय, कपिल, मानव, उषनस्, ब्रह्माण्ड, वारुण, कालिका, वसिष्ठ, लिङ्ग, महेश्वर, साम्ब, सौर, पराशर, भार्गव, मारीच उपपुराण। एक नीलमत उपपुराण भी मिलता है। इनके अतिरिक्त कुछ अन्य उपपुराण भी हैं-आदित्य, मुद्गल, कल्कि, देवीभागवत, व हद्धर्म, परानन्द, पशुपति, हरिवंश तथा विष्णुधर्मोत्तर।

प्रमुख उपपुराणों का परिचय

हरिवंश पुराण

'हरिवंश' को महाभारत का खिल भाग माना जाता रहा है; किन्तु इसमें पुराणों के सभी लक्षण विद्यमान हैं, अतः इसका विकास एक स्वतन्त्र पुराण के रूप में हुआ है। यह खेद की बात है कि विद्वानों ने महापुराण के रूप में इस पर कम ध्यान दिया है, फलतः यह उपेक्षा का पात्र बना हुआ है। इसका कारण यह है कि महापुराणों की सूची में जिन १८ पुराणों को स्थान दिया गया है, उनमें हरिवंश नहीं है। पर फरक्युहर तथा विण्टरनित्स प्रभ ति विद्वानों ने इसमें पौराणिक तत्त्वों का पर्यवेक्षण कर इसे महापुराणों में स्थान दिया है और संख्या-क्रम से इसे २०वाँ पुराण कहा है। अधिकांश विद्वान् इसे उपपुराण ही स्वीकार करते हैं।

'हरिवंश' साहित्यिक तथा सांस्कृतिक द ष्टि से अत्यन्त महनीय कृति है। इसमें पुराण के पंच लक्षण सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश मन्वन्तर तथा वंशानुचरित का विस्त त विवेचन है। 'हरिवंश' तीन बड़े पर्वों में विभाजित है; इसकी श्लोक संख्या १६३७४ है। प्रथम पर्व का नाम 'हरिवंश पर्व' है, जिसमें ५५ अध्याय हैं। इसके द्वितीय पर्व को 'विष्णुपर्व' कहते हैं, इसमें ८१ अध्याय हैं। 'त तीयपर्व' का नाम 'भविष्य पर्व' है, जिसमें १३५ अध्याय हैं। हरिवंश में विस्तारपूर्वक विष्णु भगवान का चरित वर्णित है तथा कृष्ण की कथा एवं ब्रज में की गयी उनकी विविध लीलाओं का मोहक वर्णन है। इसमें पुराणपंचलक्षण का पूर्णतः विनियोग हुआ है तथा ग्रन्थ का आरम्भ स ष्टि की उत्पत्ति से किया गया है। इसमें प्रलय का भी वर्णन है तथा वंश और मन्वतरों के अनुरूप राजाओं तथा ऋषियों के विविध आख्यान वर्णित हैं। इसमें पुराणों में वर्णित अनेक साम्प्रदायिक प्रसंग भी मिलते हैं।; जैसे वैष्णव, शैव एवं शाक्त विचारधारायें। 'हरिवंश' में योग तथा सांख्य-सम्बन्धी विचार हैं तथा अनेक दार्शनिक तत्त्वों का भी विवेचन प्राप्त होता है। इसके प्रथम पर्व में ध्रुव, दक्ष तथा उनकी पुत्रियों की कथा, वेद और यज्ञविरोधी राजा वेन की कथा, उनके पुत्र तथा प थु, विश्वामित्र एवं वशिष्ठ के आख्यान वर्णित हैं। अन्य विषयों के अन्तर्गत राजा इक्ष्वाकु एवं उनके वंशधरों तथा चन्द्रवंश का वर्णन है।

द्वितीयपर्व में (विष्णु) मानव रूपधारी विष्णु अर्थात् कृष्ण की कथा अत्यन्त विस्तार के साथ कही

गयी है। इसमें विष्णु और शिव से सम्बद्ध स्तोत्र भी भरे पड़े हैं। भविष्य पर्व में आने वले युगों के सम्बन्ध में भविष्यवाणियां की गई हैं। इसी पर्व में वाराह, न सिंह एवं वामन अवतार की कथा अत्यन्त विस्तार के साथ दी गयी है तथा शिव और विष्णु को एक दूसरे के निकट लाने का प्रयास किया गया है। शिव और विष्णु एकदूसरे की स्तुति करते हुए दिखाये गये हैं। इसी अध्याय में कृष्ण द्वारा राजा पौण्ड्र के वध का वर्णन है। इसके अन्त में 'महाभारत' एवं 'हरिवंश पुराण' की महिमा गायी गयी है।

'महाभारत' में भी इस बात का संकेत है कि हरिवंश उसका खिल या परिशिष्ट है तथा हरिवंश और विष्णुपर्व को महाभारत के अन्तिम दो पर्वों के रूप में ही परिगणित किया गया है।

हरिवंशस्ततः पर्वं पुराणं खिल संज्ञितम्।

भविष्यत् पर्व चाप्युक्त खिषलेष्वेवाद्भुतं महत्।। १।२।६६

'हरिवंश' में भी ऐसे प्रमाण मिलते हैं जिससे पता चलता है कि इसका सम्बन्ध 'महाभारत' से है। जैसे; अग्निपुराण में रामायण, महाभारत एवं पुराणों के साथ हरिवंश का भी उल्लेख है।

सर्वे मत्स्यावताराद्या गीता रामायणं त्विह।

हरिवंशो भारतं च नवसर्गाः प्रदर्शिताः।।

आगमो वैष्णवो गीतः पूजादीक्षाप्रतिष्ठथा।" २८३।५२,५३

'गरुडपुराण' में महाभारत एवं हरिवंशपुराण का कथासार दिया हुआ है। ऐसा लगता है कि उत्तरकाल में 'हरिवंश' स्वतन्त्र वैष्णव ग्रन्थ के रूप में स्वीकार किया जाने लगा था। इस संबंध में डॉ० वीणापाणि पाण्डेय ने अपने शोध प्रबन्ध में यह निष्कर्ष प्रस्तुत किया है : महाभारत-विषयक अनेक प्रमाण दो निष्कर्ष प्रस्तुत करते हैं। पहले निष्कर्ष के अनुसार हरिवंश पुराण महाभारत का अन्तरंग भाग है। द्वितीय निष्कर्ष के परिणामस्वरूप खिल हरिवंश एक सम्पूर्ण पुराण के रूप में दिखलाई देता है। हरिवंश के पुराण प चलक्षणों के साथ पुराणों में समानता रखने वाली कुछ स्म ति सामग्री भी मिलती है। इसी कारण खिल होने पर भी हरिवंश का विकास एक स्वतन्त्र पुराण के रूप में हुआ है।"

'हरिवंश' में अन्य पुराणों की अपेक्षा अनेक नवीन एवं महत्वपूर्ण तथ्यों का विवेचन है, जिससे इसकी महनीयता सिद्ध होती है। इसमें अन्य पुराणों की अपेक्षा कृष्ण के चरित्र वर्णन में नवीनता है; जैसे 'छालिक्यगेय' नामक वाक्य मिश्रित संगीत तथा अभिनय का कृष्ण के चरित्र के अन्तर्गत वर्णन तथा पिण्डारक तीर्थ में यादवों एवं अन्तःपुर की समस्त रानियों के साथ कृष्ण की जलक्रीड़ा। इसमें बज्रनाभ नामक दैत्य की नवीन कथा है, जिसमें बज्रनाम की कन्या प्रभावती क साथ प्रद्युम्न के विवाह का वर्णन किया गया है। इसी प्रसंग में भद्रनामक नट द्वारा 'रामायण' एवं 'कौवेरम्भाभिसार' नामक नाटकों के खेलने का उल्लेख भारतीय नाट्यशास्त्र की एक महत्वपूर्ण सूचना है। हर्टेल कौर कीथ प्रभ ति विद्वान् इसी प्रसंग के आधार पर ही संस्कृत नाटकों का सूत्रपात मानते हैं। हरिवंश में वर्णित 'छालिक्य' विविध वाद्यों के साथ गाया जाने वाला एक भावपूर्ण संगीत है, जिसके जन्मदाता स्वयं कृष्ण कहे गये हैं।

छालिक्यगान्धर्वगुणोदयेषु ये देवगन्धर्वमहर्षिसंघाः।

निष्ठां प्रयान्तीत्यवगच्छबुद्धया छालिक्यमेवं मधुसूदनेन।। -२।८६,८३

तत्र यज्ञे वर्तमाने सुनाट्येन नटस्तदा।

महर्षीस्तोषयामास भद्रनामेति नामतः।। २।६१।२६

इसमें द्वारवती के निर्माण में भारतीय वास्तुकला का उत्कृष्ट रूप मिलता है तथा वास्तुकला-सम्बन्धी कई पारिभाषिक शब्द भी प्राप्त होते हैं, जो तद्युगीन वास्तुकला के विकसित रूप का परिचय

देते हैं। जैसे 'अष्टमार्गमहारथ्या' तथा 'महाषोडशचत्वर'। इसके दार्शनिक विवेचन में भी अनेक नवीन तथ्य प्रस्तुत किये गये हैं तथा सर्ग और प्रतिसर्ग के प्रसंग में भारतीय दर्शन की सुव्यवस्थित परम्परा का पूर्वकालिक रूप प्राप्त होता है। 'हरिवंश' के काल-निर्णय के सम्बन्ध में विद्वानों में मतैक्य नहीं है, पर अन्तःसाक्ष्य एवं बहिःसक्ष्य के अनुसार इसका समय त तीय शताब्दी से भी पूर्व निश्चित होता है। हापकिंस, हाजरा एवं फर्कुहर ने इसका समय चतुर्थ शताब्दी स्वीकार किया है। अश्वघोषकृत 'बज्र सूची' के कुछ श्लोक हरिवंश में भी पाये जाते हैं और उसने 'हरिवंश' के कई श्लोकों को ग्रहण किया है। अश्वघोष का समय प्रथम से द्वितीय शती है, अतः 'हरिवंश' की प्राचनीता असंदिग्ध है। इससे ज्ञात होता है कि प्रथम शती में भी हरिवंश विद्यमान था। वेबर एवं रायचौधरी ने भी इस मत को स्वीकार किया है। हरिवंश में दीनारों का नाम आया है और श्री सीबेल भारत में दीनारों के प्रचलन का समय प्रथम से द्वितीय शताब्दी मानते हैं इस द ष्टि से हरिवंश पुराण त तीय शताब्दी के बाद की रचना नहीं है।

साहित्यिक द ष्टि से भी 'हरिवंश' एक स्तरीय रचना है। इसमें बोधगम्य एवं प्रसादपूर्ण शैली सर्वत्र प्रयुक्त हुई है। प्रद्युम्न और प्रभावती-मिलन के समय वर्षाऋतु का वर्णन काव्य की द ष्टि से अत्यन्त उत्कृष्ट है। प्रद्युम्न ने वर्षा के सथ प्रभावती के रूप सौन्दर्य की तुलना कर उसकी मनोहर छवि का वर्णन किया है। सुन्दर बिम्बवाला चन्द्रमा जो उसके मनोहर मुख के समान ज्ञात होता था, वह वर्षा काल में नहीं दिखायी देता है। ऐसा लगता है कि प्रभावती के केशपाशों के सद श मेघों ने उसे छिपा लिया है। मेंघ के अंक में दिखायी देनेवाली विद्युत् स्वर्णाभरणों से विभूषित प्रभावती के सद श ज्ञात होती है तथा गरजते हुए मेघ उसके मौक्तिक हारों के समान जल की स्वच्छ धाराएँ गिरा रहे हैं।

तवाननाभो वरगात्रि चन्द्रो
न द श्यते सुन्दरि चारुबिम्बः।
त्वत्केशपाशप्रतिमैर्निरुद्धो
बलाहकैश्चारुनिरन्तरोरु।।
संद श्यते सुभ्रु तडिद् घनस्था
त्वं हेमचार्वाभरणान्वितेव।
मु जन्ति धाराश्च घना नदन्त-
स्त्वद्धारयष्टेः सद शा वराङ्गि।। २।६५।२।३।।

'हरिवंश' का छालिक्यक्रीडा-वर्णन कलात्मकता का उत्कृष्ट रूप प्रस्तुत करता है।

देवी भागवत

देवी या शक्ति के माहात्म्य का वर्णन होने के कारण इसे देवी को भागवत कहते हैं। सम्प्रति भागवत संज्ञक दो पुराणों की स्थिति विद्यमान है-'श्रीमद्भागवत' एवं 'देवी भागवत' और दोनों ही महापुराण कहा जाता है। श्रीमद्भागवत में भगवान् विष्णु का महत्त्व प्रतिपादित किया गया है और देवी भागवत में शक्ति की महिमा का बखान हुआ है। इस समय दोनों ही ग्रन्थों में द्वादश स्कन्ध एवं १८ हजार श्लोक हैं। 'पद्म', 'विष्णु', 'नारद', 'ब्रह्मवैवर्त्त', 'मार्कण्डेय', 'वाराह', 'मत्स्य', तथा 'कूर्म' महापुराणों में पौराणिक क्रम से भागवत को पंचम स्थान प्राप्त है, किन्तु शिवपुराण के रेवामाहात्म्य में 'श्रीमद्भागवत' नवम स्थान पर अधिष्ठित कराया गया है। अधिंकांशतः पुराणों में 'भागवत' को ही महापुराण की संज्ञा दी गयी है, किन्तु यह तथ्य अस्पष्ट रह गया है कि दोनों में से किसे महापुराण माना जाये। 'पद्मपुराण' में सात्त्विक पुराणों के अन्तर्गत 'विष्णु', 'नारद', 'गरुड', 'पद्म' एवं 'वाराह' के साथ 'श्रीमदभागवत' का भी उल्लेख है।

'गरुड़पुराण' एवं 'कूर्म पुराण' में भी यह मत व्यक्त किया गया है कि जिसमें हरि या विष्णु का चरित्र वर्णित है, उसे सात्त्विक पुराण कहते हैं। इस द ष्टि से देवी भागवत का स्थान सात्त्विक पुराणों में नहीं आता। 'वायुपुराण', 'मत्स्यपुराण' कालिका उपपुराण एवं आदित्य उपपुराण देवी भागवत को महापुराण मानते हैं, जबकि पद्म, विष्णुधर्मोत्तर, गरुड, कूर्म तथा मधुसूदन सरस्वती के 'सर्वार्थसंग्रह' एवं नागोजीभट्ट के धर्मशास्त्र में इसे उपपुराण कहा गया है। पुराणों में स्थान-स्थान पर भागवत के वैशिष्ट्य पर विचार करते हुए तीन लक्षण निर्दिष्ट किये गये हैं, जो 'श्रीमद्भावगत' में प्राप्त हो जाते हैं। वे हैं गायत्री से समारम्भ, व त्रवध का प्रसंग तथा हयग्रीव-ब्रह्मविद्या का विवरण।

निबन्ध ग्रन्थों तथा धर्मशास्त्रों में 'श्रीमद्भागवत' के ही श्लोक उद्ध त किये गये हैं, देवी भागवत के नहीं। इससे श्रीमद्भागवत की प्राचीनता सिद्ध होती है। इससे विद्वान् यह निष्कर्ष निकालते हैं कि देवी भागवत एक उपपुराण है।

देवी भागवत के पूरे अध्याय में दान-सम्बन्धी पद्य हैं। यदि देवी भागवत उनकी द ष्टि में भागवत के रूप में प्रसिद्ध होता तो वे अवश्य ही उसके तत्सम्बन्धी श्लोक को उद्ध त् करते। अतः वल्लालसेन के अनुसार 'वैष्णव भावगत' ही भागवत के नाम से कथित होता है। अलबेरुनी के ग्रन्थ (समय १०३० ई०) में 'श्रीमद्भागवतपुराण' को वैष्णव पुराणों में अन्यतम मानकर स्थान दिया गया है, किन्तु इसकी किसी भी सूची में 'देवीभागवत' का नाम नहीं है। इससे इसके अस्तित्व का अभाव परिलक्षित होता है। 'नारदीय पुराण' के पूर्वभाग के ६६ अध्याय में 'श्रीमद्भागवत' के जिन वर्ण्यविषयों का उल्लेख है, वे आज भी भागवत में प्राप्त हो जाते हैं, पर 'देवी भागवत' से उनका मेल नहीं है। 'श्रीमद्भावगत' में 'देवी भागवत' का कहीं भी निर्देश नहीं है, पर 'देवी भागवत' के अष्टम स्कन्ध के भौगोलिक वर्णन पर 'श्रीमद्भावत' के पंचम स्कन्ध की छाया स्पष्ट है। भुवनकोष के अन्य विभागों के वर्णन में भी 'देवी भागवत' पर 'श्रीमद्भागवत' का प्रभाव दिखाई पड़ता है। 'देवी भागवत' में १८ पुराणों के अन्तर्गत भागवत का नाम है, तथा उपपुराणों में भी भागवत का नाम दिया गया है। (१।३।१६) उपर्युक्त विवरण से यह सिद्ध होता है कि वास्तव में 'श्रीमद्भागवत' ही महापुराण का अधिकारी है तथा उसकी प्राचीनता 'देवी भागवत' से असंदिग्ध है। देवी भावगत में शक्तितत्त्व का प्राधान्य है और देवी को आदि शक्ति मानकर उसका वर्णन किया गया है।

इसमें देवी या शक्ति के सभी रूपों का विस्त त विवेचन कर शाक्ततत्त्व का महत्त्व दर्शाया गया है। 'देवी भागवत' मेंदुर्गा आदिशक्ति के रूप में प्रदर्शित है और ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव को उन्हीं के द्वारा स ष्टि, पालन एवं संहार करने की प्रेरणा प्राप्त होती है। यहाँ देवी पराशक्ति एवं परब्रह्म के सर्वथा सर्वदा एकत्व एवं अविनाभावसंबंध के रूप में अधिष्ठित हैं। उनके अनुसार प्रकृति आदि समस्त कारणों का भी कारण ब्रह्म उनका ही रूप है। इसमें उनके दो रूप कहे गये हैं- निर्गुण और सगुण। निर्गुण मायारहित है और सगुण माया-युक्त। शिव शक्ति के बिना सदा शव के समान रहते हैं और जब वे शक्ति-युक्त रहते हैं तभी शिव कहे जाते हैं। 'देवी भावगत' में ब्रह्म के साथ शक्ति का एकत्वस्थापन किया गया है। स्वयंदेवी जी के मुख से यह तथ्य कहलाया गया है-"मुझमें और उस ब्रह्म में तनिक भी भेद नहीं है। हम सदा एक ही हैं। जो वह है, वही मैं हूँ, और जो मैं हूँ, वही वह है। बुद्धि के ही भ्रम से भेद प्रतीत होता है। हम लोगों के सूक्ष्म (अभेदमय लीला) भेद को जो जानता है, वही बुद्धिमान् है।....ब्रह्म एक ही है, दूसरा कोई है नहीं। वह नित्य है और सनातन है। केवल स ष्टि रचना में वह द्वैतवाद को प्राप्त होता है। जैसे एक ही दीपक उपाधिभेद से अनेक प्रकार का तथा एक ही मुख की छाया दर्पण के भेद से भाँति-भाँति की दिखायी देती है, वैसे ही विभिन्न रूप से भासने पर भी हम दोनों एक ही हैं। स ष्टि-रचना के समय भेद दीख पड़ता है। द श्य और अद श्य में यह दो प्रकार

का भेद दिखाई देना सर्वथा युक्त ही है। वस्तुतः संसार का अभाव होने पर मैं न स्त्री हूँ, न पुरुष हूँ और न नपुसंक ही हूँ। फिर स ष्टि आरम्भ हो जाने पर यह भेद हो जाता है।"

विष्णुधर्मोत्तर पुराण

यह वैष्णव उपपुराणों में अत्यन्त महनीय है। यह भारतीय कला का विश्वकोश है, जिसमें वास्तुकला, चित्रकला एवं 'अलंकार शास्त्र' का विस्त त विवेचन है। इसमें 'नाट्य शास्त्र' तथा काव्यालंकार-विषयक एक सहस्त्र श्लोक हैं। इसके चार अध्याय-१८, १६, ३२, ३६-गद्य में हैं जिनमें गीत, आतोद्य, मुद्राहस्त तथा प्रत्यङ्ग विभाग का वर्णन है। इसके जिस अंश में चित्रकला, मूर्तिकला, नाट्यकला तथा काव्यशास्त्र का वर्णन है, उसे चित्र सूत्र कहा जाता है। इसका प्रारम्भ बज्र और मार्कण्डेय के संवाद से होता है। मार्कण्डेय के अनुसार "देवता की उसी मूर्ति में देवत्व रहता है जिसकी रचना चित्रसूत्र के आदेशानुसार हुई है तथा जो प्रसन्नमुख है।"

चित्रसूत्रविधानेन देवतार्चा विनिर्मिताम्।
सुरूपां पूजयेद्विद्वान् तत्र संनिहिता भवेत्।। १।७

इसके द्वितीय अध्याय में यह भी विचार व्यक्त किया गया है कि बिना चित्र सूत्र के ज्ञान के 'प्रतिमालक्षण' या मूर्ति कला समझ में नहीं आ सकती तथा बिना न त्तशास्त्र के परिज्ञान के चित्रसूत्र समझ में नहीं आ सकता। न त्त वाद्य के बिना संभव नहीं तथा गीत के बिना वाद्य में भी पटुता नहीं आ सकती। इसके त तीय अध्याय मे छन्दों का वर्णन है और चतुर्थ अध्याय में 'वाक्यपरीक्षा' की चर्चा की गयी है। पंचम अध्याय में विषय हैं-अनुमान के पाँच अवयव, सूत्र की ६ व्याख्याएँ, तीन प्रमाण एवं इनकी परिभाषाएँ, स्म ति, उपमान तथा अर्थापत्ति। षष्ठ अध्याय में 'तन्त्रयुक्ति' का वर्णन है तथा सप्तम अध्याय में विभिन्न प्राकृतों का विवेचन ग्यारह श्लोकों में किया गया है। अष्टम अध्याय में देवताओं के पर्यायवाची शब्द दिये गये हैं तथा नवम और दशम अध्यायों में शब्दकोश है। एकादश, द्वादश एवं त्रयोदश अध्यायों में लिंगानुशासन है तथा प्रत्येक अध्याय में १५ श्लोक हैं। चतुर्दश अध्याय में १७ अलंकारों का वर्णन है और पंचदश अध्याय में काव्य-निरूपण है, जिसमें काव्य एवं शास्त्र के साथ अन्तर स्थापित किया गया है। इसमें काव्य में नौ रसों की स्थिति मान्य है। षोडश अध्याय में रूपक-वर्णन है और उनकी संख्या बारह कही गयी है। इसमें कहा गया है कि नायक की म त्यु, राज्य का पतन, नगर का अवरोध एवं युद्ध का नाटक में साक्षात् प्रदर्शन नहीं होना चाहिये, इन्हें प्रवेशक द्वारा वार्त्तालाप के रूप में प्रकट कर देना चाहिये। इसी अध्याय में आठ प्रकार की नायिकाओं का विवेचन हुआ है। इसके अष्टादश अध्याय में गीत स्वर, ग्राम तथा मूर्च्छनाओं का वर्णन है, जो गद्य में प्रस्तुत किया है। उन्नीसवाँ अध्याय भी गद्य में है, जिसमें चार प्रकार के वाद्य, बीस मण्डल तथा प्रत्येक के दो-दो प्रकार, दस-दस भेद तथा ३६ अङ्गहार वर्णित हैं। बीसवें अध्याय में अभिनय का वर्णन है। इसमें दूसरे के अनुकरण को नाट्य कहा गया है, जिसे न त्त द्वारा संस्कार और शोभा प्रदान किया जाता है। अध्याय २१ से २३ तक शय्या, आसन एवं स्थानक का प्रतिपादन एवं २४वें, २५ वें में आंगिक अभिनय वर्णित है। २६वें अध्याय में १३ प्रकार के संकेत तथा २७वें में आहार्याभिनय का प्रतिपादन है। आहार्याभिनय के चार प्रकार माने गये हैं-प्रस्त, अलंकार, अङ्गरचना एवं संजीव। २६वें अध्याय में पात्रों की गति का वर्णन एवं ३०वें में रस का निरूपण २८ श्लोकों में किया गया है। ३१वें अध्याय में ४६ भावों का वर्णन है तथा ३३वें अध्याय में न त्य का वर्णन है तथा ३२वें में हस्तमुद्राओं का विवेचन हुआ है। ३३वें अध्याय में न त्य-विषयक मुद्रायें १२४ श्लोकों में वर्णित हैं और अध्याय ३५ से ४३ तक चित्रकला का तथा ४४ से ८५ तक मूर्त्ति एवं स्थापत्यकला का वर्णन है। विष्णु धर्मोत्तर पुराण के काव्यशास्त्रीय अंशों पर नाट्यशास्त्र का प्रभाव है; किन्तु रूपक और रसों के सम्बन्ध में कुछ अन्तर भी है। डॉ० काणे के अनुसार इसका समय पाँचवीं शताब्दी से पूर्व का है।

विष्णुधर्मोत्तर पुराण के वर्णित विषय मौलिक न होकर संकलित हैं। यह भारतीय विद्या का विश्वकोश है। इसमें कहानियाँ, कथा या निजंधरी कथाएँ ही नहीं हैं, अपितु यह भूगोल, स ष्टि क्रम, खगोलविद्या, ज्योतिष, नक्षत्रविद्या, वंशावलियाँ, स्त्रियों के कर्त्तव्य, यज्ञ, व्रत, श्राद्ध, तीर्थों के माहात्म्य, विविध प्रकार के रत्नों का वर्णन, विधि, राजशास्त्र, आयुर्वेद, पशुचिकित्सा, व्याकरण, शब्दकोश, छन्द, काव्यशास्त्र, नाट्यशास्त्र, न त्य, संगीत, प्रतिमानिर्माण, मूर्त्तिकला, चित्रकला, ग हनिर्माणकला, वैष्णव सिद्धान्त आदि विषयों का विशाल कोश है। इसमें महाभारत, गीता, नाट्यशास्त्रआदि ग्रन्थों के अतिरिक्त अनेक फुटकर श्लोकों के उद्धरण हैं। इस पुराण की महत्ता स्थापित करते हुए भविष्य पुराण इसे शास्त्र की संज्ञा प्रदान करता है। इसमें मुख्यरूप से वैष्णव दर्शन एवं पूजाविधि का उल्लेख हुआ है। इसके अनेक अध्यायों में दण्डनीति का भी वर्णन है। इसे पा चरात्र का पोषक ग्रन्थ माना जाता है।

न सिंह पुराण

यह वैष्णव उपपुराण है। इसका प्रकाशन (हिन्दी अनुवाद के साथ) अभी कुछ वर्ष पूर्व गीताप्रेस, गोरखपुर से हुआ है। इसमें न सिंह को विष्णु का एक अवतार मानकर उन्हें नारायण या ब्रह्म का रूप दिया गया है। यह पा चरात्र-विषयक रचना है। इसमें पुराण सम्बन्धी पाँच विषयों का वर्णन है। इसके कतिपय अध्यायों में योग की शिक्षा, यज्ञ तथा न सिंह की पूजा-पद्धति का निरूपण है। इसमें सूर्य और चन्द्रवंशी राजाओं की वंशावलियाँ भी हैं, जिसमें उदयन और वासवदत्ता के पौत्र क्षेमक एवं शुद्धोदन के पुत्र सिद्धार्थ तक का विवरण प्रस्तुत किया गया है। इसमें यम-यमी का पूरी कथा का रोचक वर्णन है तथा रामायण, महाभारत, वायुपुराण और वाराह पुराण के उद्धरण प्राप्त होते हैं। विद्वानों ने इसका समय पंचम शती के लगभग माना है।

नारद पुराण

यह भी वैष्णव उपपुराण है। इसमें विष्णु भक्ति का वर्णन हुआ है। यह पांचरात्र से संबद्धरचना है, जिसका उद्देश्य वैष्णव सिद्धान्तों एवं विधि-विधानों (नियमों) का विविध कथाओं के माध्यम से वर्णन करना है। नारदपुराण में व्रतों का वर्णन है और कुछ अध्यायों में गंगा का माहात्म्य वर्णित है। इसमें वर्णाश्रम धर्म, श्राद्ध तथा पापों के प्रायश्चित्त भी वर्णित हैं। विद्वानों के मतानुसार इसकी रचना बंगाल या उड़ीसा के किसी भाग में ७५० ई० से लेकर ६०० ई० के बीच हुई है।

ब ह्द्धर्मपुराण

इसमें विष्णु को परमात्मा से अभिन्न मानकर उनकी भक्ति-विशेषतः दास्य भक्ति का वर्णन है। प्रथम भाग का अधिकांश अंग देवी तथा जप और विजया के संवाद के रूप में रचित है। इसमें गंगा की उत्पत्ति और माहात्म्य का विस्त त विवरण है और अन्तिम भाग में वर्णाश्रम धर्म, स्त्री धर्म, ग्रह पूजा, वर्ष भर के उत्सव और व्रत तथा पाप एवं बुराइयों का वर्णन है। माता-पिता और गुरु के प्रति कर्त्तव्यों का इसमें विशेष विवरण प्राप्त होता है तथा तीर्थों का विस्त त वर्णन किया गया है। इनके अतिरिक्त रामायण और महाभारत की कथाएँ वर्णित हैं।

गणेश पुराण

गणेश पुराण में गणेश की महत्ता का वर्णन कर उन्हें परमात्मा से अभिन्न दिखलाया गया है। इसका समय ५०० ई० से ८०० ई० के आसपास माना गया है। शाम्बपुराण का प्रकाशन बम्बई से १८८५ ई० में हुआ था। इसमें सूर्योपासना का प्रतिपादन किया गया है। शाम्ब ने शाम्बपुर के मित्रवन में सूर्य प्रतिमा की स्थापना की थी। इसमें सूर्य की पूजा के अतिरिक्त स ष्टिप्रक्रिया,

ब्रह्माण्ड, प थ्वी का भूगोल, सूर्य एवं उनकी परिचर्या तथा योग का वर्णन है। यह लघु रचना है।

मुद्गल पुराण

मुद्गल पुराण अभी अप्रकाशित है और इसमें गणपति या गणेश का वर्णन है। इसमें गणपति का गणेश के नौ अवतारों का विवरण प्राप्त हुआ है-वक्रतुण्ड एकदन्त, महोदर, गजानन, लम्बोदर, विकट, विघ्नराज, धूम्रवर्ण एवं योग। यह तांत्रिक उपासना से प्रभावित है और गणपति के बत्तीस प्रकारों का विवेचन प्रस्तुत करता है। अनुमानतः इस उपपुराण की रचना ६०० ई० से ११०० ई० के आसपास हुई है।

कल्कि पुराण

कल्कि पुराण में कलियुग में विष्णु के अवतार कल्कि का वर्णन है। यह पुराण कलकत्ता से प्रकाशित हो चुका है।

कालिका पुराण

कालिका पुराण का प्रकाशन चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी से १६७२ ई० में हुआ है। इसमें काली के अनेक रूप धारण करने का वर्णन है। इसकी रचना कामरूप या आसाम के निकट हुई थी। इसमें काली को विष्णु की माया और योगनिद्रा के रूप में दिखाया गया है जो आगे चलकर शिव की पत्नी सती के रूप में दिखाई पड़ती है। इसमें भगवती कासी एवं उनके भयंकर कर्मों का विशद विवेचन प्राप्त होता है तथा आसाम के पर्वत, नदियों एवं धार्मिक स्थानों का वर्णन मिलता है। इस पुराण की रचना दसवीं शताब्दी के आस-पास हुई थी। कामरूप या आसाम के सामाजिक, धार्मिक एवं राजनैतिक इतिहास जानने के लिए यह पुराण अत्यन्त उपादेय है। इसमें नर-बलि और पशु-बलि का उल्लेख है।

नीलमत पुराण

नीलमत पुराण का प्रकाशन १६२४ ई० में लाहौर में हुआ था। इसमें काश्मीर का इतिहास, स्थानों का विवरण एवं अनुश्रुतियाँ हैं तथा राजा नील का विवरण एवं उनके मत का विवेचन है। इस पुराण का उल्लेख कल्हण रचित राजतरंगिणी में प्राप्त होता है। कल्हण ने काश्मीर का आदि इतिहास इसी से लिया है। इसका समय कल्हण से बहुत पूर्व माना जा सकता है।

पशुपति पुराण में नेपाल के राजाओं की वंशावलिंयाँ दी गयी हैं। इसके वर्ण्य विषयों में नेपाल माहात्म्य और वाग्वती-माहात्म्य है।

पुराणों के आख्यान

आख्यान शब्द का अर्थ रामायण के आख्यानों के प्रसंग में पहले ही स्पष्ट किया जा चुका है। स्कन्द पुराण के अनुसार पुराण के सर्गादि प च लक्षणों के अतिरिक्त शेष जो भी विवेच्य विषय है वह आख्यान के नाम से प्रसिद्ध है-"प चाङ्गानि पुराणस्य चाख्यानमितरत् स्म तम्"। वस्तुतः सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर और वंशानुचरित इन पाँच प्रतिपाद्य विषयों के अतिरिक्त पुराणों में आख्यान, उपाख्यान, गाथा और कल्पशुद्धि इन लोकोपयोगी विषयों का संग्रह भी हुआ है।-

आख्यानैश्चाप्युपाख्यानैः गाथाभिः कल्पशुद्धिभिः।
पुराणसंहितां चक्रे पुराणार्थ विशारदः।।

इस प्रकार आख्यान, उपाख्यान और गाथायें पुराणशास्त्र का महत्त्वपूर्ण भाग हैं।

आख्यानों के वैदिक स्वरूप को देखने से यह प्रायः स्पष्ट हो जाता है कि वैदिक वाङ्मय में